दैनिक जागरण

Date: 02-11-26

# लोकतंत्र के लिए खतरा है भीड़तंत्र

रमाकांत शर्मा, ( लेखक बिहार स्टेट बार काउंसिल के चेयरमैन हैं )



आधुनिक राजनीतिक दर्शन में लोकतंत्र को केवल बहुमत का शासन नहीं, बल्कि संवाद, विमर्श और असहमति के सह-अस्तित्व की सतत प्रक्रिया माना जाता है। परिपक्व लोकतांत्रिक व्यवस्थाएं अपनी वैधता और स्थायित्व तब प्राप्त करती हैं, जब नागरिकों को व्यवस्था की कमियों पर सवाल उठाने और शांतिपूर्ण प्रतिरोध का पर्याप्त अवसर मिलता है। असहमति को लोकतंत्र का सुरक्षा-वाल्व माना जाता है। इसके वैधानिक रास्ते बंद होने पर राजनीतिक व्यवस्था में अव्यवस्था की आशंका बढ़ जाती है। इक्कीसवीं सदी के तीसरे दशक में भारत सहित दुनिया के कई हिस्सों में एक स्पष्ट बदलाव दिखाई दे रहा है। शांतिपूर्ण, सत्याग्रह-प्रेरित और कानून के दायरे में होने वाले जन आंदोलनों की जगह धीरे-धीरे आक्रामक, अनियंत्रित और व्यवस्था-विरोधी भीड़तंत्र लेता जा रहा है। जब असहमति सार्वजनिक जीवन को बाधित करने, राष्ट्रीय संपत्ति को नुकसान पहुंचाने और प्रशासनिक तंत्र को बंधक बनाने का रूप लेती है, तब लोकतंत्र भीड़तंत्र में बदलने लगता है। कानूनों में संशोधन, विकास योजनाओं और संवैधानिक संस्थाओं के विरोध में हुए प्रदर्शनों ने वैध जनविरोध और अराजक भीड़तंत्र के बीच अंतर निर्धारित करने का बुनियादी प्रश्न खड़ा कर दिया है।

दक्षिण एशिया से पश्चिमी यूरोप तक की घटनाएं दर्शाती हैं कि जब जनांदोलन संवैधानिक मर्यादाओं का उल्लंघन करते हैं, तो लोकतंत्र भीड़तंत्र में बदलने लगता है। वर्ष 2022 में श्रीलंका के 'अरगलाया' आंदोलन और नेपाल में लगातार हुई नाकेबंदियों ने संस्थागत स्थिरता को कमजोर किया। वहीं अगस्त 2024 में बांग्लादेश का आरक्षण-विरोधी आंदोलन हिंसक सत्ता-परिवर्तन में बदल गया, जिसके बाद संसद, न्यायपालिका और अल्पसंख्यकों की सुरक्षा से जुड़ी व्यवस्थाएं गंभीर संकट में आ गईं। पश्चिमी लोकतंत्र भी इस संकट से अछूते नहीं हैं। फ्रांस, इटली, बेल्जियम, पुर्तगाल, स्पेन और अल्बानिया में लोग सरकारी नीतियों के विरोध में प्रदर्शन कर रहे हैं। फ्रांस में महंगाई, शिक्षा व्यवस्था की बदहाली और सार्वजनिक सेवाओं में कटौती के विरोध में शुरू हुए प्रदर्शन कुछ स्थानों पर आगजनी, लूटपाट और पुलिस के साथ झड़पों में बदल गए। इटली और बेल्जियम में भी प्रदर्शनकारियों द्वारा सार्वजनिक संपत्ति को नुकसान पहुंचाने की घटनाएं सामने आईं। परिपक्व लोकतांत्रिक व्यवस्था वाले इन देशों में वैधानिक प्रक्रियाओं के बजाय सड़क पर अराजकता के जरिये निर्णय हासिल करने की कोशिश चिंताजनक है। भारत के लिए भी यह गंभीर चिंता का विषय है कि कुछ घरेलू तत्व इस अराजकता से कुप्रेरणा लेकर 'ढाका की तर्ज पर दिल्ली में 'रिजीम चेंज' का आह्वान कर रहे हैं।

गहरे मतभेदों और लंबे आंदोलनों के बावजूद भारत तीन प्रमुख आधारों पर अपने पड़ोसी देशों (श्रीलंका, बांग्लादेश और नेपाल) की तरह संस्थागत पतन या तख्तापलट से बचा रहा है। पहला, पड़ोसी देशों से अलग भारतीय सेना पूरी तरह गैर-राजनीतिक रही है और उसने हमेशा निर्वाचित नागरिक सरकार तथा संविधान के अधीन अपनी भूमिका निभाई है। दूसरा, संघीय ढांचा और केंद्र तथा राज्यों में होने वाले नियमित चुनाव 'सुरक्षा वाल्व' का काम करते हैं। इनके माध्यम से जनता का असंतोष सड़कों पर लंबे समय तक बने रहने के बजाय मतपेटियों के जरिये अभिव्यक्त होता है। तीसरा, सक्रिय न्यायपालिका ने कार्यपालिका और प्रदर्शनकारियों के बीच संवैधानिक मध्यस्थ की भूमिका निभाई है। यही संस्थागत लचीलापन और संतुलन भारत को राजनीतिक अराजकता से बचाए रखने में मदद करता है।

लोकतंत्र को भीड़तंत्र से बचाने और जनांदोलनों को संवैधानिक दायरे में रखने के लिए चार संस्थागत सुधार जरूरी हैं। पहला, 'पूर्व-विधायी परामर्श नीति, 2014' को सख्ती से लागू करते हुए विधेयकों को कम से कम 30 दिनों तक सार्वजनिक विमर्श के लिए रखा जाए, ताकि नीतिगत असंतोष समय रहते दूर हो सके। दूसरा, प्रकाश सिंह वाद (2006) के निर्देशों के अनुरूप पुलिस को राजनीतिक हस्तक्षेप से मुक्त किया जाए और उसे आधुनिक, गैर-घातक भीड़-नियंत्रण तकनीकों तथा मनोवैज्ञानिक प्रशिक्षण से लैस किया जाए। तीसरा, प्रदर्शनों के दौरान सार्वजनिक संपत्ति को हुए नुकसान की भरपाई के लिए कठोर और पारदर्शी केंद्रीय कानून बनाया जाए। चौथा, हिंसा भड़काने वाले दुष्प्रचार पर अंकुश लगाने और एल्गोरिदम की जवाबदेही तय करने के लिए इंटरनेट मीडिया प्लेटफार्म की कानूनी जिम्मेदारी निर्धारित की जाए।

लोकतांत्रिक संतुलन बनाए रखने के लिए राज्य को अपनी शक्तियों का दुरुपयोग नहीं करना चाहिए और नागरिकों को अपने संवैधानिक कर्तव्य निभाने चाहिए। सरकार का दायित्व है कि वह असहमति के स्वरों को संवेदनशीलता से सुने, वहीं प्रदर्शनकारियों को हिंसा का रास्ता छोड़कर कानूनी और शांतिपूर्ण संवाद अपनाना चाहिए। अधिकार और कर्तव्य जब तक एक-दूसरे के पूरक बने रहेंगे, तब तक भारत का लोकतंत्र भीड़ के क्षणिक उन्माद से अप्रभावित रहते हुए अपने संवैधानिक आदर्शों की रक्षा कर सकेगा।

जनसत्ता

Date: 02-11-26

# साइबर संजाल

**संपादकीय**



देश की अर्थव्यवस्था को डिजिटल बनाने के लिए हर स्तर पर व्यापक प्रयास किए जा रहे हैं। इसी का नतीजा है कि आनलाइन माध्यम से धन के लेन-देन में तेजी से विस्तार हो रहा है। आज लोग घर बैठे पैसे भेजने, बिल का भुगतान, खरीदारी और बैंकिंग जैसी सेवाओं के लिए विभिन्न डिजिटल मंचों का इस्तेमाल करते हैं इंटरनेट बैंकिंग ने निश्चित तौर पर आर्थिक गतिविधियों को सुविधाजनक बनाया है, मगर इसके जोखिमों का दायरा जिस तरह फैलता जा रहा है, वह गंभीर चिंता का विषय है। साइबर अपराधी नए-नए तरीके अपनाकर लोगों की मेहनत की कमाई को एक झटके में उड़ा ले जाते हैं। इस तरह की वारदात का अफसोसनाक पहलू यह है कि इसमें बैंकों की कोई जवाबदेही नहीं रहती है, भले ही तकनीकी तौर पर उनकी खामियां भी इसके लिए जिम्मेदार हों। इसी चिंता को रेखांकित करते हुए सर्वोच्च न्यायालय ने बीते गुरुवार को स्पष्ट कहा कि डिजिटल धोखाधड़ी के मामलों में यदि किसी वित्तीय संस्थान की उचित जांच-पड़ताल में नाकामी के कारण अपराध हुआ है, तो पीड़ितों को कम-से-कम गंवाई गई रकम के बराबर मुआवजा मिलना चाहिए।

डिजिटल धोखाधड़ी का सबसे चिंताजनक पहलू यह है कि साइबर अपराधी लोगों की तकनीकी जानकारी की कमी और उनके विश्वास का फायदा उठाते हैं। कभी बैंक अधिकारी बनकर फोन किया जाता है, तो कभी केवाईसी अपडेट करने, बिजली का कनेक्शन काटने या किसी सरकारी योजना का लाभ दिलाने के नाम पर लोगों को जाल में फंसाया जाता है। फर्जी लिंक, नकली वेबसाइट, सोशल मीडिया संदेश और मोबाइल एप के माध्यम से भी ठगी की जाती है। कई बार तो किसी जांच एजंसी के नकली अधिकारी बनकर लोगों को 'डिजिटल अरेस्ट' करके धन की उगाही कर ली जाती है। शीर्ष अदालत ने इसे 'डिजिटल 'डकैती' बताते हुए कहा है कि ऐसे लोगों के खिलाफ कड़ी कार्रवाई की जानी चाहिए। अदालत का इस बात पर हैरानी जताना भी उचित है कि व्यापक जागरूकता अभियान चलाने के दावों के बावजूद पढ़े-लिखे लोग इस तरह की साइबर धोखाधड़ी का शिकार कैसे हो रहे हैं! इससे सरकार के दावों और हकीकत के बीच अंतर का पता चलता है।

इसे सरकार की नीतिगत विफलता ही माना जाएगा कि एक तरफ लोगों को डिजिटल भुगतान के लिए प्रेरित और प्रोत्साहित किया जा रहा है, दूसरी ओर इसके तकनीकी जोखिमों से निपटने के लिए न व्यवस्था के स्तर पर

प्रभावी उपाय नजर आते हैं और न ही आम लोगों की डिजिटल साक्षरता को लेकर गंभीरता दिखाई देती है। यहां तक कि बैंकों जैसी वित्तीय संस्थाओं की जवाबदेही तय करने की जरूरत भी महसूस नहीं की गई है। यही वजह है कि सर्वोच्च न्यायालय को कहना पड़ा कि भारतीय रिजर्व बैंक के प्रस्तावित नियामकीय ढांचे में साइबर धोखाधड़ी की रोकथाम, मुआवजे और वित्तीय संस्थानों की जवाबदेही के स्पष्ट प्रावधान होने चाहिए। जाहिर है, बैंकों की भूमिका केवल डिजिटल सेवाएं उपलब्ध कराने तक सीमित नहीं हो सकती। उन्हें संदिग्ध लेन-देन की पहचान करने वाली प्रणालियों को मजबूत करने के साथ ही असामान्य गतिविधियों पर तुरंत चेतावनी और ग्राहकों की शिकायतों का जल्द निपटारा भी सुनिश्चित करना चाहिए। इसमें दोराय नहीं कि डिजिटल तकनीक ने देश में आर्थिक गतिविधियों को गति दी है, लेकिन इसका सुरक्षित होना भी उतना ही आवश्यक है।